नशा हिरन

हिन्दी ADDA

हरि भटनागर

नशा हिरन

https://www.hindiadda.com/nasha-hiran/

उसकी आँखों में नशा है

नशे में सपना

सपने में मैं

और मैं में वह!

यह किसी कविता की पंक्ति नहीं है। उद्‌गार है मेरा, बाई के लिए जो हमारे घर का बर्तन मलती है, झाड़ू लगाती है, पोंछा मारती है। मैं उसका दीवाना हूँ। वह बला की सुंदर है कि आप भी आकृष्ट हुए बिना नहीं रह सकते। फिर मैं क्या हूँ। आपसे उम्र में बड़ा ही हूँ। बाल सुफेद हो गए हैं, उन्हें छिपाने का जतन करता हूँ, मेंहदी लगाता हूँ, गोदरेज लेपता हूँ, बावजूद इसके हालत खराब है। सेहत अच्छी नहीं रहती। रोज-ब-रोज कुछ न कुछ लगा रहता है। कभी सिर में दर्द, कभी कमर में, कभी दस्त तो कभी उल्टी-बावजूद इसके मरा जा रहा हूँ बाई के लिए जिसकी बड़ी-बड़ी रहस्मयी आँखें हैं, एकदम काली। भौंहें कमान-सी तनी हैं, माथा ऊँचा है और उसके नीचे छोटी-पतली नाक! नाक में चमकती लौंग है - है न वह सुंदर! वह न बहुत लंबी है न बहुत नाटी। बीच की है। छातियाँ उभरी हुई जिन्हें ब्लाउज और धोती में छिपाने का जतन करती है लेकिन वे छिप नहीं पातीं।

मेरी दीवानगी का आलम यह है कि एक दिन मैं उसके ठीहे पर जा पहुँचा। कई दिनों से सोच रहा था। उस दिन चला ही गया। बाई अंदर रोटी पका रही थी। उसका आदमी बाहर था। आदमी यही कोई पचीस-एक साल का होगा - मरा-मरा सा। छाती अंदर को धँसी। गाल के हाड़ बुरी तरह बाहर को उभरे, आँखें गढ़े में काँपती-सी निस्तेज। बाल उलझे। आगे के दाँत बड़े-बड़े पीलेपन की परत लिए नीचे के होंठ पर रखे। वह बेलदारी करता है। मतलब कि चौकीदारी, दोमंजिला बन रहे मकान की। नीचे के ढाँचे में रहता है। बेलदारी के साथ मजूरी भी करता है।

मुझे देखकर वह रूखा बना रहा जैसा कि है। मैं सोचता था कि प्रसन्न होगा, बोरा-पीढ़ा बिछा देगा, पानी के लिए दौड़ेगा, बाई को पुकारेगा, पंखा झलेगा, लेकिन यह कमीन, लठ, पूरी तरह रूखा बना रहा, कुछ-कुछ चिढ़ा जो यह जाहिर करता है कि मेरी घरवाली के पीछे पड़नेवाले कमीन, सुधर जा, नहीं वो लात दूँगा खैंच के कि भूल जाएगा सारी नक्शेबाजी! वहीं मैं हूँ जो यह एहसास दिला चुका कि तू बाई के काबिल नहीं और भूल जा उसे! अब वह मेरी है, मेरी!! क्या?

खैर, मैं अपने तुफेल में था। बेलदार का उद्धार चाहता था कि वह इस लिचड़ई से निकले और बेहतर जिंदगी जिए। बोला - यहाँ दिन-रात खटने पर तुझे छे सौ मिलते हैं, हमारे दफ्तर के नीचे चाय का ठेला लगाओ तो हजारों पीट लो और ज्यादा मेहनत भी नहीं!

सोच रहा था कि वह उत्साह से भर उठेगा, मिन्नत-विनती पर उतरेगा जैसा कि अपने भले के लिए लोग करते हैं लेकिन उसने ऐसा कुछ न किया। वह उसी तरह रूखा और चिढ़ा रहा। यहाँ तक कि मेरी ओर देखा तक नहीं। छोटे काले माथे पर बल पड़ गया, आँखें तन गईं गोया कह रही हों कि अपनी सलाह अपने पास रख, मुझे जरूरत नहीं हजारों की!

मैं जोर से बोला ताकि अंदर बैठी बाई सुन ले और इस मरदूद से कहे कि साहब कित्ते अच्छे हैं, अपने लिए फिकरमंद हैं, जा कर ले जैसा वे कहें, लेकिन बाई ने मेरी बात सुनकर, अनसुनी की और बाहर नहीं आई। धुएँ में रोटी पकाती रही।

मैं उसी रौ में था, बोलता गया - सामान मैं खरिदवा दूँगा, चिंता मत कर! रसे-रसे दे देना या न देना!

मैंने उसे बहुतेरी नेक सलाह दी। दुखद था, वह मिनका तक नहीं। न ही मेरी ओर उसने देखा। सिकुड़े माथे, तनी आँखों वह घुन्नाता-सा टूटे टीन के डिब्बे से बाल्टी से पानी भर-भर कर प्लास्टर की गई दीवार को तर करता रहा।

वह दीवार पर हन-हनकर पानी डालता जैसे दीवार की जगह मैं हूँ और जोर की अस्पष्ट आवाज निकालता जैसे बोझा पटकते या लकड़ी चीरते वक्त लकड़हारा कुल्हाड़ी की चोट करते हुए निकालता है। ऐसा कर जैसे कह रहा हो अच्छा चल हट, बहुत हो गया! काम करने दे मुझे। मुझे क्या है? मुफ्त की तोड़ेगा। यहाँ दिन रात रगड़ूँगा तब रोटी नसीब होगी। बुरा-सा मुँह बनाता वह अपनी नफरत मेरी ओर फेंकता रहा।

ऐसे में मेरे लिए खड़ा रह पाना असह्य हो रहा था, बावजूद इसके मैं उससे यही कहे जा रहा था कि मैं तेरी बेहतरी के लिए परेशान हूँ। जब भी कहेगा, तेरा काम जमवा दूँगा...

मैं घर लौट आया। गुस्सा गायब था। ख्वाब था। ख्वाब में यह कि बाई आँगन में बर्तन घिर रही है और मुझे कनखियों से देख रही है। मुझे गुदगुदी हो रही है। मैं उससे कहता

हूँ कि तू कहाँ उस ठीहे में पड़ी है! मेरे घर आ जा और आराम से रह! अपने उस मरकटिये के साथ रहने की क्या जरूरत! यहाँ सब आसाइश है फिर दिक्कत...

सहसा छत का प्लास्टर झड़ा और ठीक मेरे सिर पर। मैं छत की ओर देखता हूँ। सोचता हूँ कि किराये के मकान में रह रहा हूँ, एक कमरा है, अंगुल बराबर आँगन, इसमें वह भला कैसे रहेगी? मैं यह भी अक्सर सोचता हूँ कि घरवाली के होते, बाई के चक्कर में क्यों दिमाग खराब कर रहा हूँ? कहीं कुछ उल्टा-सीधा हो जाए तो कहीं का न रहूँगा? न भी हो उल्टा सीधा फिर भी क्यों गला फँसा रहा हूँ गलत जगह! औरत जात वह भी छोटी जात, किसी की नहीं होती - ऐसे में बाई के चक्कर में पड़ना ठीक नहीं - जैसा चल रहा है, उम्र के हिसाब से चलने दो, आफत मोल न लो... लेकिन दिमाग ही कुछ ऐसा खराब है जो इन सारी बातों को सिरे से खारिज करता है - और मैं पलटकर कहता हूँ कि क्यों न बाई के चक्कर में पड़ो! बला की सुंदर औरत को क्यों छोड़ दूँ, वह इसी घर में रहेगी! ताल ठोंककर रहेगी! पत्नी की क्या हिम्मत कि जरा भी चीं-चपड़ करे! फिर मेरे टुकड़ों पर पलनेवाली औरत जो पाँच सौ की खातिर एक प्राइवेट-से प्राइमरी स्कूल में दिनभर खटती है, उसका मुँह नहीं तोड़ दूँगा। हुलिया नहीं बिगाड़ दूँगा। इसी बाई को काम पर रखने पर उसने दबे स्वर में न-नुकर की थी, मैंने घुड़का तो वह डर गई थी, बोली थी - ठीक है, जो आप समझो करो, मैं स्कूल जा रही हूँ। मैंने झल्लाकर कहा - जा, मर, लौट के मत आना!

स्टूल पर बैठा मैं पुराना अखबार बाँच रहा हूँ, दिमाग बाई में लगा है। बाई बर्तन मल रही है। उसके हाथ बला के सुंदर हैं। कुहनी और बाजू ऐसे जैसे गेहूँ की सुनहरी बालियाँ!

यकायक बाई ने मुझे देखा और सचेत होकर वह राख सनी चुटकी से धोती खींचकर हाथ के खुले हिस्से को ढाँपने लगी।

बाई चौकस रहती, बोलती कुछ नहीं। उसकी चुप्पी बहुत कुछ बोलती जैसे हाथ के हिस्से को ढाँपकर उसने बता दिया, मैं तेरे झाँसे में आनेवाली नहीं, कायदे में रह!

लेकिन मैं कायदे में कहाँ रहनेवाला था। उसे पटरी पर लगाने की जुगत में था।

- बाई, तू अपने आदमी को समझाती क्यों नहीं, अभी भी समय है ठेला लगा सकता है चाय, समोसे का...

बर्तन घिसते उसके हाथों में गति आ गई जैसे जल्दी से जल्दी निपटाकर भागना चाहती हो।

मेरे कहे पर वह चुप रही।

- तू बोलती क्यों नहीं? मैं तो तेरे अच्छे के लिए परेशान हूँ।

वह चुप। मुस्कुराती है मानों कहना चाह रही हो कि जितना तू परेशान है, मैं अच्छे से जानती हूँ!

झाड़ू-पोंछा उसने नहीं किया। बर्तन का झौवा अंदर पटका और चलती बनी। मानों बतलाना चाहती हो कि अपनी गंदी मंशा के चलते तू मेरे काम न करने का विरोध नहीं कर पाएगा, बर्दाश्त करेगा।

और वास्तव में मैंने बर्दाश्त किया। झाड़ू-पोंछा खुद किया।

दूसरे दिन जब वह बर्तन मल रही थी, सिर खुजलाता मैं उसके सामने आ खड़ा हुआ। बहुत ही सँभलकर बोला - कल तुमने झाड़ू-पोंछा नहीं किया!

वह कुछ न बोली। कनखियाँ बोलती रहीं।

- खैर, छोड़, मैं ही ये काम कर लिया करूँगा, ठीक है?

वह फिर कुछ न बोली। होंठ चाँपे सपाटे से काम निपटाती चलती बनी। झाड़ू-पोंछा उसने नहीं किया।

मैं सोच में था कि झाड़ू-पोंछा न करने के पीछे बाई की आखिर मंशा क्या है? कहीं प्रेम की स्वीकारोक्ति तो नहीं! लगता तो ऐसा ही कुछ है।

मैं मगन था।

दूसरे दिन उसके आने पर मैंने कहा - दो दिन से तू मुझसे झाड़ू-पोंछा लगवा रही है, सोच ले!

कनखियों से देखकर वह हल्का-सा मुस्कुराई और काम में लग गई।

तीर सही जगह लगा है! मैं धन्य हुआ।

- तू चूल्हे धुएँ में रोटी पकाती है, मैं तेरे लिए बत्ती का स्टोव ला देता हूँ और जो तू कहेगी...

यकायक उसके चेहरे पर सख्ती उभर आई। बर्तन मलते हाथ रुक गए। उसने मुझे घूरकर देखा।

मैं डरा, किंतु निधड़क होकर बोला - बाई, तू मेरी बात समझती क्यों नहीं?

उसका चेहरा और सख्त था। वह कुछ सोच रही थी एकटक बर्तनों को देखते हुए जैसे मैंने असंगत बात कह दी हो। बड़बड़ाते हुए यकायक वह उठ खड़ी हुई। हाथ उसके राख से रँजे थे। आँखों से अंगारे बरसने लगे जैसे कह रही हो कि मैं कोई कसबिन नहीं जो तेरे आगे बिछ जाऊँ, फाड़ खाऊँगी, समझा?

होंठ चाभे, घूरते हुए, पैर पटकते वह दरवाजे की ओर बढ़ी और जोरों-से दरवाजा ठेल अधूरा काम छोड़कर चली गई।

मैं डरा कि शायद ही अब वह काम पर आए और हाथ से गई। यह भी हौल था कि कहीं आदमी से कुछ उल्टा-सीधा भिड़ा न दे और बात तूल खींचे!

अजीब संकट में था। रात भर मैं सो नहीं पाया।

लेकिन दूसरे दिन वह काम पर थी। जाहिर है कि वह बात घोंट गई। मेरी जान में जान आई। एक-दो दिन में शांत रहा। फिर मैंने उसे अपने कंपे में फँसाने के लिए दाना डाला। निछान दूध की चाय बनाकर दी। बोला - बाई, चाय!

चाय की तरफ उसने देखा तक नहीं। जितनी तेजी से हो सकता था, काम उसने पूरा किया और चलती बनी।

मैं हताश था! फिर भी हौसला बनाए रखा। दूसरे दिन फिर चाय दी। उसने पहले दिन जैसा सलूक किया। तीसरे और चौथे दिन भी वही सलूक।

मेरे उत्साह पर पानी पड़ गया था। क्या चाहती है? क्या करूँ कि निहाल हो जाए और समर्पित।

मैंने बहुत-बहुत लालच-कपड़े-लत्तों से लेकर रुपये-पैसों और सामानों की दी, लेकिन वह किसी के आगे न झुकी, उल्टे फट पड़ी जोरों से उस रोज - तू चाहता क्या है? इज्जत पे हाथ लगाया तो मुंडी मरोड़ दूँगी समझा? मैं बोल नहीं रही हूँ तो कमीन सिर

पे चढ़ा जा रहा है! मेरे सामने वह तनकर खड़ी थी। हाथ के दोनों पंजे आपस में गुँथे थे जैसे उसकी बात का अमल करना चाहते हों। वह बहुत कुछ उल्टा-सीधा बकती रही, फिर झौवे और बर्तनों पर जोरों की लात मारी जैसे कह रही हो कि तुझे और तेरे कबाड़ को जहन्नुम में भेजती हूँ। समझा? और मुझे घूरते हुए दरवाजा ठेलती फरार हो गई। जाते-जाते उसने मुड़कर जमीन पर थूका जैसे कह रही हो कि थू है तेरी जात पे, हरामी के पिल्ले! ऊपर से अच्छा बनता है, पेट में कमीनपन की दाढ़ी! थू है, मुँहजले! अब मैं नहीं जानेवाली। रो अब अपने करम पे, कमीन!!

मैं माने बैठा था कि वह यूँ ही चिल्ला-चोट पर उतर आई है, कल काम पर आएगी जैसे पहले आई थी, मैं उसके आने के इंतजार में था लेकिन वह काम पर नहीं आई। अपने कहे पर अटल रही। उसने काम छोड़ दिया था।

मैंने सिर पीट लिया।

मैं उसके ठीहे पर पहुँचा तो उसका आदमी पहले जैसा रूखा बना रहा। वह बाहर झाड़ू लगा रहा था, मुझे देखकर ज्यादा से ज्यादा धूल उड़ाने लगा। अंदर बाई धुएँ में थी जोर-जोर से चिल्लाते हुए किसी औरत से बतिया रही थी मानों यह बतलाना चाह रही हो कि यह कमीन कुत्ते की तरह पीछे पड़ा है, जब तक जूते नहीं खाएगा, माननेवाला नहीं।

दोनों की नाराजगी समझ में आ रही थी, लिहाजा मैं ज्यादा देर वहाँ खड़ा न रहा, घर लौट आया यह सोचता कि अभी छेड़ने से बात बिगड़ जाएगी, कुछ दिन में मामला अपने आप सुलझ जाएगा। वह काम पर आएगी।

लेकिन मामला सुलझ नहीं रहा था, उलझ गया था। वह काम पर नहीं आई तो नहीं आई।

उसने काम छोड़ दिया था, लेकिन मैं उसे छोड़ नहीं पा रहा था। रह-रह उसकी याद सताती और मैं तकरीबन रोज कोई न कोई लालच ले उसके ठीहे पर पहुँच जाता। यह बात अलग थी कि उसका और उसके आदमी का बर्ताव बहुत ही खराब होता। लेकिन मैं बाई के लिए सारी हतक झेलने को तैयार था।

आने वाले तीन माह बहुत ही खराब थे। खराब इस माने में कि मुझे ऑफिस के काम से छिंदवाड़ा भेज दिया गया। मैं जाना नहीं चाह रहा था, लेकिन करता क्या? बाबुओं की हरमजदगी के आगे जाना पड़ा और तीन महीने वहाँ बमशक्कत जेल जैसा भुगतना

पड़ा। बहुत ही हैरान-परेशान होकर वहाँ से लौटा तो बरसात शुरू थी और ऐसी मूसलाधार बारिश कि हफ्ते भर तक बूँद न टूटी। इसी में मुझे मलेरिया हुआ और तकरीबन एक महीने बिस्तर पर डला रहा। कहने का खुलासा यह कि मेरी हालत खासी पतली थी। उस पर बाई की याद और उस तक पहुँच न पाने की कलक! आप सोच सकते हैं क्या हालत रही होगी मेरी। बहरहाल।

जब बदन में थोड़ी जान आई तो किसी तरह काँखते-कूँखते एक दिन सुबह-सुबह मैं बाई के ठीहे पर पहुँचा। नीचे के ढाँचे में धुआँ न था और न उसका मरघिल्ला आदमी! सूना-सूना-सा लग रहा था जैसे अब यहाँ कोई न रहता हो।

ढाँचे में अंदर झाँकने को था कि बगल के मकान में रहने वाला एक मजदूर धीरे-धीरे चलता मेरे पास आया। मैंने पूछा तो अपनी गलबैठी आवाज में उसने बताया कि बेलदार अब यहाँ नहीं है, वह तो अस्पताल में भर्ती है!!

अस्पताल में!! मेरी आँखें खुली कि खुली रह गईं। इसलिए नहीं कि उसके अस्पताल में होने से मैं दुखी हुआ बल्कि इसलिए कि बाई यहाँ से चली गई। अब मैं कहीं का न रहा।

मजदूर ने आश्चर्य से कहा - अरे बाबू, आपको पता नहीं। - वह सारी बात विस्तार से ऐसे बताने लगा जैसा हमारे संबंधों के बारे में जानता हो - एक दिन आधी रात को बेलदार के पेट में सूल उठा कि वह रात भर तलफता रहा। हम लोगों ने उसके पेट की सिकाई की और जिसने जो सलाह दी, की लेकिन कोई आराम नहीं। सुबह हम सब उसे अस्पताल ले गए वहाँ भी कोई आराम नहीं। पंद्रह दिन तक वह अस्पताल में रहा। फिर उसकी घरवाली हारकर उसे झाड़-फूँक के लिए गाँव ले गई, वहाँ वह ठीक हो गया, मगर दस दिन बाद फिर वही सूल! घरवाली हारकर फिर उसे उसी अस्पताल में ले आई, तब से वह अस्पताल में भर्ती है, पता नहीं क्या मर्ज है, कुछ समझ में नहीं आता, डागडर कुछ बताते नहीं...

- किस अस्पताल में है? - मैंने पूछा

- जयप्रकाश अस्पताल में, साहब!

कीचड़-कांदों के बीच किसी तरह रास्ता बनाता अफसोस में भरा मैं घर आया यह सोचता कि बाई भी गजब की है, मदद के लिए मेरे पास नहीं आई! कितनी खुद्दार औरत है! और एक मिसाल...

कि दरवाजे की कुंडी खड़की।

मैंने जोर से डपटकर पूछा - कौन है बे, बेवक्त परेशान करने आया।

कोई आवाज नहीं।

आगे बढ़कर दरवाजा खोला तो मैं दंग था - सामने बाई खड़ी थी।

- अरे बाई तुम? मुँह से बेसाख्ता चीख-सी निकल पड़ी - तुहारा आदमी बीमार था, तुमने मुझे खबर तक न दी।

बाई मुर्दार खाल जैसी खड़ी रही। आँखें सूनी थीं। चेहरा झटका हुआ, कुछ-कुछ ऐसा जैस पोलिया रोग हो। लुटी-पिटी लग रही थी। वह रौनक न थी जो पहले हुआ करती थी। बावजूद इसके उसमें कहीं कुछ ऐसा था जो मुझे आकर्षित कर रहा था जिसके चलते मैंने उससे पूछा - बोलो, हुकुम करो, कैसे आना हुआ?

यह तै था कि वह मेरे पास मदद के लिए आई थी - मैं उसकी मदद करना भी चाहता था - इसलिए भी कि आगे का रास्ता साफ हो जाए, लेकिन मन में यह बात उफन रही थी कि पलटकर कहूँ कि अब क्यों आई है, मतलब है, अटकी में है तो मैं याद आया, इसके पहले तो सीधे मुँह बात नहीं कर रही थी, ऐंठ दिखा रही थी, अब कहाँ गई ऐंठ? बोल? और वह तेरा मरकटिया...

मैं उससे यह सब पूछना चाह रहा था लेकिन उसकी धज के आगे चुप रहा।

होंठ उसके भिंचे थे जैसे उन्हें खोलने के लिए उसे मेहनत करनी पड़ेगी। यकायक मरी-मरी सी आवाज में वह बोली - पैसे चाहिए?

मैंने सोचा, पचास-एक रुपये दे देते हैं क्योंकि यह मजबूर है और मजबूरी में यह दस बार अपने पास आएगी, फिर जब धीरे-धीरे रास्ते पर आएगी, अपना काम सधेगा तो ज्यादा रुपये देंगे। अभी ज्यादा क्यों दें? टोकन दे देते हैं। इस लिहाज से मैं अंदर गया और दस-दस के पाँच नोट थामे, बाहर लौटा। लौटते वक्त यह विचार भी कौंधा इतने कम पैसे कहीं वह न ले तो...

लेकिन बात इसके उलट थी। पैसे उसे मेरे से चील की तरह झपट्टा मारकर छीने और बिना देखे उन्हें ब्लाउज में आगे खोंसने लगी।

यकायक उसने मेरी ओर सूनी निगाहों से देखा और मशीनी तौर पर कहा - 'अंदर चलें' और हिसाब चुकता करने की बात की।

अपनी टुच्चई मैं बर्दाश्त कर सकता था किंतु उसका यह नया रूप कतई नहीं। इतने हद तक वह अपने को गिरा देगी - मैं उसके इस रूप को स्वीकार नहीं कर पा रहा था और न इसके लिए तैयार ही था। अगर वह मेरे आग्रह-विनती पर समर्पित होती तो बात ही अलग थी, लेकिन चुकता करने के रूप में वह मुझे जरा भी अच्छी न लगी और मैं एकदम घबरा गया। और हैरान-परेशान-सा उसे भयभीत निगाहों से देखने लगा।

वह थी कि वही बात फिर दोहराने लगी।